Degree -1st. Paper-II

कर्म का सिद्धान्त (The Doctrine of Karma)

भारतीय चिन्तन के आरम्भिक स्तर में कर्म का तात्पर्य एक विशेष परिस्थिति में व्यक्ति द्वारा अपने कर्तव्य को पूरा करने से था, दैव अथवा भाग्य से नहीं।

महाभारत में कर्म के सिद्धान्त की व्याख्या प्रमुख रूप से वर्ण-व्यवस्था के औचित्य को सिद्ध करने के लिए की गयी है। महाभारत के वन पर्व में कहा गया है कि "पूर्व जन्म में किये गये कर्मों का फल इस जीवन में अवश्य भोगना पड़ता है – जो व्यक्ति कर्म के सिद्धान्त से अभिज्ञ हैं वे यह नहीं जानते कि उनके दुःख उनके ही अशुभ कर्मों के परिणाम हैं।" इस प्रकार महाभारत में व्यक्ति के भाग्य की व्याख्या उसके पूर्व जन्म के कर्मों के आधार पर ही स्पष्ट किया गया।

गीता के अन्तर्गत कर्म के सिद्धान्त को सबसे अधिक विशद् और वैज्ञानिक आधार

प्रस्तुत किया गया। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।' अर्थात व्यक्ति कर्म करने में ही अपना अधिकार समझे, कर्मफल की आशा न करे। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को उतारकर नए वस्त्रों को धारण करता रहता है, उसी प्रकार आत्मा भी एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में प्रवेश करती रहती है। इस प्रकार जन्म और मृत्यु की चिन्ता न करके व्यक्ति स्वधर्म का पालन करता रहे, यही वास्तविक कर्म है। व्यक्ति को अपने कर्म का फल अवश्य मिलता है।

मनुस्मृति में कर्म की व्याख्या केवल जन्म, पुनर्जन्म और मोक्ष के सन्दर्भ में ही नहीं की गयी है बल्कि इसके अन्तर्गत सभी तरह के कर्मों के फल निर्धारित करके व्यक्ति को स्वधर्म के पालन की प्रेरणा दी गयी है। मनु के अनुसार सभी कर्म मन, वाणी और शरीर से उत्पन्न होकर व्यक्ति को अच्छे अथवा बुरे फल प्रदान करते हैं। पुण्य कर्म अथवा धर्मानुसार किये जाने वाले कर्म तीन प्रकार के होते हैं। सात्विक, राजस तथा तामस। सात्विक कर्मों का सम्बन्ध निष्काम रूप से स्वधर्म का पालन करने से है, राजस कर्म 'अर्थ' से सम्बद्ध है जबकि तामस कर्म में काम प्रधान रहता है। सात्विक कर्म करने वाले को देवत्व की गति मिलती है, राजस कर्म के लिए मनुष्य योनी और तामस कर्म के लिए निकृष्ट योनि प्राप्त होती है अथवा स्थावर योनि प्राप्त होती है।

CLASSMATE
Date :
Page : 3.

मनुस्मृति के ज्ञान का आधार स्वधर्म-पालन को माना गया है और स्वधर्म से तात्पर्य मुख्यतः व्यक्ति द्वारा अपने वर्ण-धर्म का पालन करने से है। इस प्रकार मनुस्मृति में प्रत्येक स्थान पर कर्म के सिद्धान्त को, वर्ण-व्यवस्था के औचित्य को प्रमाणित करनेवाला एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

पतंजलि योगसूत्रों के अनुसार जन्म और पुनर्जन्म के बन्धन का कारण अविद्या है। अविद्या का तात्पर्य उस मिथ्या ज्ञान से है जिसके कारण व्यक्ति कर्म योग को प्राप्त नहीं कर पाता। यह अविद्या पाँच प्रकार की होती है – (क) विभ्रम, अर्थात भ्रमवश स्वयं और प्रकृति को एक मान लेना; (ख) अस्मिता, अर्थात शरीर और जीव अथवा आत्मा में विभेद न कर सकना; (ग) द्वेष, अर्थात अर्थात् कष्ट देने वाली वस्तुओं से घृणा करके उनसे दूर रहना; (घ) राग, अर्थात विषयों में लगाव रखना; (ङ) अभिनिवेष, अर्थात जीवन के प्रति अत्यधिक मोह तथा मृत्यु से भयभीत रहना। यह अविद्या ही मनुष्य के सभी क्लेशों का प्रमुख कारण है और इसी के कारण व्यक्ति जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसा रहता है। इस प्रकार ज्ञान की अग्नि अविद्या को जलाकर व्यक्ति को संसार के प्रति निर्लिप्त कर देती है। ऐसा ही ज्ञानी पुरुष मोह माया से छूटकर पुनर्जन्म के बन्धन से स्वतन्त्र हो जाता है।